© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

नारियों का योषिदलङ्कारनुशीलन : आचार्य विश्वेश्वर

दीपा पाण्डेय
शोधच्छात्रा
संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

शोध–सार

नारी की विभिन्न चेष्टाएँ उनके शील तथा स्वभाव का प्रदर्शन करती है। प्रेम एवं माधुर्य के प्रतीक योषिदलङ्कार नारियों के प्रेमरूपी सौन्दर्य को प्रकाशित करते हैं। आचार्य विश्वेश्वर ने रसचन्द्रिका में अपने पूर्ववर्ती अन्य विद्वानों के मतों का उल्लेख करते हुए नारियों के विभिन्न चेष्टाएँ जो उनके शील स्वभावादि का प्रदर्शन करते हैं। स्त्रियों के अलङ्कारों में उनके आभूषण केशविन्यास वस्त्रादि उनकी शोभा से संवर्द्धन करते हैं किन्तु उनके अङ्गां उपङ्गों आदि के द्वारा भी उनके सौन्दर्य में वृद्धि का विधान किया गया है। वाणी, अङ्ग, मुखराग तथा सत्त्व से युक्त अभिनय द्वारा हृदय के अतिसूक्ष्म भावों का प्रकटीकरण होता है। इन योषेदलङ्कारों के द्वारा स्त्रियां अपनी हृदय की सुकोमल मनोदशाओं को अभिव्यक्त करती है। इन यौवनालङ्कारों के द्वारा भावों का सम्प्रेषण भी होता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आचार्य विश्वेश्वर ने स्वरचित ग्रन्थ रसचन्द्रिका में स्त्रियों के जीवन एवं वाह्य एव आन्तरिक सौन्दर्य के ज्योतिर्मयी आभा को प्रकाशित करने वाली योषिदलंङ्कारों का अतिरमणीय ढंग से वर्णन किया है।

मूल भाब्द– योषिदलङ्कार, रसचन्द्रिका, यौवनालङ्कार, ज्योतिर्मयी, सौन्दर्य, केशविन्यास

'योषिदलङ्कारनुशीलन' में पुरुष तथा स्त्रियों के आंि ाक विकारों द्वारा 'सात्त्विक भावों' का प्रदर्शन होता है। नारियों के आंि ाक विकार उनके यौवनकाल में अधिक वृद्धिशील रहते हैं।

आङ्कि विकार तीन प्रकार के होते हैं –

1. 'आङ्गज' 2. स्वाभाविक 3. 'अयत्नज'

भरत मुनि ने 'योषिदलङ्कारों' की चर्चा करते हुए स्त्री तथा पुरुषों के अलङ्कारों का विवरण देते हुए कहा कि युवतियों के सुकुमार भाव को पुष्ट करने वाले 'रस' तथा भावों के आश्रित इन अलङ्कारों को नाट्य प्रदर्शन में शरीर तथा उसमें होने वाले अनेक मुखज विकारों तथा परिवर्तनों के द्वारा दृष्टिगत होते हैं जो यौवनावस्था में स्त्रियों में बहुतायत से होता है।

भरत ने योषिदलङ्कारों के महत्त्व को बताते हुए कहते हैं–'हाव', 'भाव', 'हेला' या अन्य 'अयन्नज' एवं 'स्वाभाविक' चेष्टालङ्कारों के द्वारा भाव सम्प्रेषण सम्भव होता है, क्योंकि ये अलङ्कार भाव एवं रसों के आधार माने जाते हैं।

आचार्य भरत ने योषिदलङ्कारों की संख्या का उल्लेख करते हुए कहा है कि शरीर के परिवर्तन से होने वाले 'आङ्गज' अलङ्कार के तीन प्रकार स्वाभाविक परिवर्तन अन्य 'सहज' अलङ्कार के दस प्रकार तथ्य अन्प्रयास रहने वाले 'अयत्नज' अलङ्कारों के सात प्रकार होते हैं।

पण्डित विश्वेश्वर ने योषिद अलङ्कारों के अन्तर्गत प्रथम 'आङ्गज' अलङ्कार का उल्लेख करते हुए कहा है–

"देहात्मकं भवेत्सत्वसत्वाद्भावः समुत्थितः।

भावात्समुत्थितों हावों हावाद्वेला समुत्थिता।"

स्त्रियों की उत्तम देहमत स्वाभाविकता को सत्व माना जाता हैं। 'सत्व' से 'भाव' का भाव से 'हाव' का, हाव से 'हेला' का उद्भव होता है।

पाण्डित विश्वेश्वर ने भी नायिकाओं के योषिदलङ्कारों का विस्तार से निरूपण किया है। यौवनकाल में उत्पन्न सभी भावों को परिभाषा एवं उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है।

योषिदलङ्कारों के प्रकार

रसचन्द्रिका में वर्णित योषिदलङ्कारों का विस्तृत विवेचन निम्नवत् है–

अङ्गज अलङ्कार– पण्डित विश्वेश्वर ने इसके तीन प्रकार बताये हैं–

(क) भाव (ख) हाव (ग) हेला

भाव

वाणी, अ मुखराग, तथा सत्व के अभिनय द्वारा नाट्यरचनाकार के अन्तर्गत एवं इष्ट भावों का भावन करवाने के कारण यह 'भाव' कहलाता है।

पण्डित विश्वनाथ के अनुसार नायिका के निर्विकार ह्रदय में काम का प्रथम उन्मेश भाव है।

नाट्यदर्पणकार का कथन है–रति और उत्तमत्त्व की सूचक वाणी आदि की विशेषता को भाव कहते हैं।

हेमचन्द्र के अनुसार नायक–नायिका के ह्रदय में वासनादि रूप में उपस्थित रतिभाव सूचक अंगविकार को भाव कहते है।

पण्डित विश्वेश्वर ने भी 'भाव' का उल्लेख करते हुए कहा है–

अनभिव्यक्तो मानसो विकारो भावः।

भाव नामक 'अङ्गज' अलङ्कार का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए पण्डित विश्वेश्वर ने निम्न पद्य कहा है–

कथाप्रसङ्गशु मिथः सखीमुखातृणेऽपि तन्व्यानलनामानिश्रुते।

द्रुतं विधूयान्यदमयतानया मुदा तदाकर्णनसज्ज्कर्णया।।

इस पद्य का 'भाव' यह है कि उस सखी द्वारा वर्णित 'नल' विषयक चर्चा को दमयन्ती अत्यन्त सावधान होकर एकाग्र चित्त से सुनती थी।

'हाव'

'भाव' की उस अवस्था को जो चित्तवृत्तियों से उद्‌भूत होकर नेत्र, भौहें, ग्रीवा के रेचक आदि आङ्गिक चेष्टाओं आदि के द्वारा शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति करते हों—'हाव' कहलाते हैं।

'किंचिदभिव्यक्तो हावः।'

हाव का उदाहरण देकर विश्वेश्वर ने निम्न पद्य प्रस्तुत किया है—

निराकूतैरेव प्रियसहचरीणां शिशुतया

वचोभिः पांचालीमिथुनमधुना सङ्गमयितुम।

उपादत्ते नो वा रहयति न व केवलमियं।

कपोलो कल्याणी पुलकमुकलैर्दनतुरयति।।

हेला

पात्रों का जो 'हाव' शृङ्गार रस के आश्रित होकर ललित शारीरिक चेष्टाओं का प्रकाशन करने वाला हो उसे भरत मुनि ने 'हेला' की संज्ञा दी है।

सागरनन्दी के अनुसार शृंगार का विस्तार प्राप्त करने वाली हठ का नाम हेला है।

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है 'हाव' का विकास ही 'हेला' कहलाता है। किसी ब्राह्मण के उपनयन की ही तरह 'हेला' पुरुषार्थसहस का पीठाबन्ध है।

स्फुटतरमभिव्यक्तों हेलेति विवकेः।

विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गैः स्फुश्द्बालकदम्बकल्पैः

साचीकृता चारूतारेण तस्यौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन।। (रसचन्द्रिका)

विश्वेश्वर ने 'हेलायुध' द्वारा 'अङ्गज' अलङ्कार के सन्दर्भ में दी गयी परिभाषा का उल्लेख रसचन्द्रिका में किया है—

"ब्राह्याथलिम्बनो यस्तु विकाते मानसो भवेत।

भाव इत्युच्यते सद्भिस्तस्योत्कर्शो रसः स्मृतः।

इस प्रकार 'हाव', 'भाव', 'हेला' को वर्णित करते हुए उन्होंने इन श्रृङ्गार चेष्टाओं का निरूपण किया है। रस के जानने की योग्यता 'भाव' कहलाती है। कुछ विकार दिखायी देने पर 'भाव' ही 'हाव' कहलाता है।

जिस अवस्था में विकार सुव्यक्त सुस्पष्ट हो जाते हैं तब वही 'भाव' 'हेला' कहलाती है।

'भाव', 'हाव' और हेला का विश्लेषण नायक—नायिका के हृदय में रति बीज के उत्पाद उद्भव और औन्मुख्य का विश्लेषण है। महाकवियों की कृतियों में प्रसिद्ध नायिकाओं के यौवनलङ्कारों का जो चित्रण है, उसमें इन तीन अलङ्कारों का वास्तविक स्वरूप—सौन्दर्य स्पष्ट परिलक्षित होता है।

उत्तम प्रकृति नायिका के चित्रण में इन्हीं अलङ्कारों की योजना महाकवियों की कला की विशेषता है।

'हाव', 'भाव' और हेला तीनों एक दूसरे से सम्बन्धित है। 'भाव' के बिना 'हाव' की उत्पत्ति नहीं होती है। अतः 'हाव', 'भाव' की अपेक्षा करता है और 'हेला', 'हाव' की अपेक्षा करती है।

स्वभावज अलङ्कार

"लीला विलासो विच्छित्तिविभ्रमः लिलकिंचितम्।

मोहायितं कुहमितं विण्वोको ललितं तथा।।

विहृतं चेति सम्प्रोक्ता दशा स्त्रीणां स्वभावजाः।"(रसचन्द्रिका)

स्त्रियों में होने वाले दस स्वभावज अलङ्कार है जिनका विवरण अधोलिखित है—

लीला

'लीला' प्रियजन से सम्बद्ध या उच्चरित क्लिष्ट शब्दों, चेष्टाओं तथा वंश का प्रीति या मधुरतापूर्वक जो अनुकरण किया जाये उसे लीला कहते हैं।

"वागङ्गालङ्कारैः क्लिष्टेः प्रीतिप्रयोजितैर्मधुरैः।

इष्टजनस्यानुकृतिर्लीला श्रेया प्रयोगज्ञैः।।"

नाट्यदर्पणकार के अनुसार प्रियतम के प्रति होने के कारण प्रियतम की वाणी आदि को श्रृङ्गाराभिश्यक्तपूर्वक अपने में लगाना 'लीला' कहलाती है।

सागरनन्दी के अनुसार जब प्रिय का मिलन न पाकर सखियों के समक्ष अपना मन कहलाने के लिए नायिका वेश, गति, परिहास, उक्ति आदि से अपने इष्टतम् प्रिय का अनुकरण करें तो उसे लीला कहते हैं।

रसचन्द्रिका में लीला का उदाहरण निम्नवत् है—

निर्मायाभरणं मृणालवलयानीशीविशाणां गणा

न्यद्धन्यप्युपधाय केतकदल खण्डं सुधादीधितेः।

आलेपं हिमबालुकाभिरूररीकृत्याभितो भूतिभि

स्तन्वानात्मनि नीललोहितुलां देवी प्रदेयान्मुदम।।

विलास

प्रियतम के दर्शन से खड़े होने बैठने तथा चलने की क्रियाओं तथा हाथ, नेत्र तथा भौहों की चेष्टाओं में एक विलक्षण परिवर्तन का होना 'विलास' है।

"स्थानासनगमनानां हस्तभ्रूनेत्रकर्मणाञ्चैव।

उत्पद्यते विशेषो यः क्लिष्टः सतु विलासः स्यात्।।

नाट्यदर्पणकार ने कहा है–प्रिय के दर्शन आदि से शरीर और कर्म में विशेष सुकुमारता 'विलास' कहलाता है।

अतः अचानक प्रिय के सम्प्राप्ति होने पर नायिका की मनोरम आङ्गिक चेष्टाओं 'विलास' कहलाती है। विलास का उदाहरण रसचन्द्रिका में वर्णित है–

कर्णोत्तंसपरि भ्रमन्य धुकर व्यासेधलक्ष्योल्लस
त्वाणिव्यापृतिजन्यकर्मजमिथोयोगणत्कङ्कणा।
हासारम्भवद्विभागम धुरं मन्दं दशान्ती रदैः
श्रीत्रोपान्तविजृमीमाणनयन धन्यं वधूर्वीक्षते।।

विच्छित्ति

विच्छित्ति उस दशा को कहते हैं जब थोड़ी सी असावधानी से माला, वस्तु तथा अलङ्कारों को धारण करने तथा चन्दन आदि का आलेपन करने पर भी सौन्दर्य वृद्धि ही हो।

"माल्याच्छादन भूषणविलेपनानामनामनादरन्यासः।

स्वल्पोऽपि परां शोभां जनयति यस्मात्र विच्छित्तिः।।

नाट्यदर्पणकार के अनुसार अत्यधिक सौन्दर्य को प्रदर्शित करने वाला स्वल्प वेश धारण ही 'विच्छित्ति' कहलाती है।

सागरनन्दी यह कहते हैं कि प्रिय के द्वारा किसी अपराध के हो जाने पर डाह के कारण फेंके गये माला, भूषण, वस्त्र आदि विविध पदार्थों को सखियों के द्वारा पुनः नायिका को पहनाया जाना 'विच्छित्ति' कहलाता है।

किलकिंचितम्

स्मित, रुदति, हास, भय, हर्ष, दुःख, श्रम तथा अभिलाषा आदि विभिन्न भावों का हर्ष के कारण होने वाला मिश्रण 'किलकिंचतम्' कहलाता है।

'स्मितहसितरूदित भयरोषमोहदुःखश्रमभिलाषाणाम्।

संकरण हषदिसकृत्किलकिंचितम् प्रोक्तम्।"

अतः किलकिंचितम् में बिना आंसुओं के रूदन बिना हंसना, अपने प्रिय के दर्शन में व्याकुलता और शीघ्रता को प्रकट करना होता है।

आज्ञा काकुर्याञ्चाक्षेपो हसितं च शुष्करूदितं च।

इति निधुवनपण्डितत्यं तस्या धयायन्न तृप्यामि।।

मोहायित

प्रिय के विषय में बातचीत चलने के समय उसका तन्मयता से लीला, हेला आदि चेष्टाओं के साथ श्रवण करना 'मोहायित' कहलाता है।

इष्टजनस्य कथायां लीला हेलाभिदर्शने चापि।

तद्भाव भावनाकृतमुक्तं मोहायितं नाम।।

पण्डित विश्वनाथ के अनुसार प्रियतम के चरित्र से सम्बद्ध आलाप–संलाप के प्रसंगों में प्रेममयी नायिका के कर्णकण्डयन आदि का नाम 'मोहायित' है।

नाट्यदर्पणकार ने कहा है कि प्रियतम के दर्शन आदि के होने पर अङ्गों का मरोड़ना 'मोहायित' कहलाता है।

कुहमित

प्रियतम के द्वारा अति हर्ष या सम्भ्रम के केश, स्तन, अधर आदि का स्पर्श या ग्रहण करने के समय दुःख के साथ होने वाली सुखात्मक क्रियाओं जैसे मस्तक हिलाना, हाथ हिलाना आदि को कुहमित कहते हैं।

"केशस्तनाधरग्रहणेश्वति हर्षसम्भ्रमोत्पन्नम्।

कुहमित विज्ञेयं सुखेऽपि दुःखोपचारेण।।

आचार्य विश्वनाथ ने कहा है—नाटक के द्वारा केश, स्तन, अधर आदि के ग्रहण में आनन्द लेने वाली नायिका का सम्भ्रमवश अपने सिर हाथ आदि का कम्पन 'कुहमित' है।

नाट्यदर्पणकार का मत है कि केश, ओष्ठ, स्तन, कर आदि के पकड़े जाने पर हृदय के भीतर प्रसन्नता के होने पर भी बाहर मिथ्या, क्रोध दिखलाना 'कुहमित' कहलाता है।

विब्बेक

स्त्रियों के अन्तःकरण में चाहते हुए भी इष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर अभिमान या गर्व के कारण उसके प्रति अनास्था या तिरस्कार की अभिव्यक्ति करना 'विब्बोक' कहलाता है।

अतः अभिमान के कारण प्रिय वस्तु के प्रति अनादर एवं अवज्ञा का दृष्टिकोण 'विब्बोक' कहलाता है।

ललित

स्त्रियों की भौह, नेत्र तथा ओठों के साथ–साथ पैरों की सुकुमारतापूर्ण हलन–चलन से स्थापन करना 'ललित' कहलाता है।

"करचरणाङ्गन्यासः सभ्रनेत्रोष्ठसंयुक्तः।

सुकुमारविधानेन स्त्रीभिरितीदं स्मृतं ललितम्।।"

विश्वनाथ ने कहा है अङ्ग प्रत्यङ्ग का सुकुमार विन्यास 'ललित' कहलाता है।

नाट्यदर्पणकार ने 'ललित' नामक यौवनालङ्कार का लक्षण स्पष्ट करते हुये कहा है–नेत्र और हाथ आदि का संचालन व्यापार, सुकुमारता, जैसे दृष्टव्य विषय के न होने पर भी दृष्टि दौड़ाना, पकड़ने योग्य किसी वस्तु के न होने पर भी हाथ आदि का चलाना–इस प्रकार का निष्प्रयोजन व्यापार 'ललित' कहलाता है।

विहृत

किसी कारणवश बोलने में असमर्थ होना 'विहृत' कहलाता है। यह कारण कोई भी हो सकता है जैसे नायिका की मुग्धता के कारण, उसके बालपन के कारण अथवा किसी कारण से मधुर वचनों का अभाव 'विहृत' नामक स्वभावज अलङ्कार है।

प्राप्तनामपि वचसां क्रियते यदभाषण हितास्त्रीभिः।

व्याजात्स्वभावतो वात्सेतत्समुहृतं विहृतम्।। (रसचन्द्रिका)

इस प्रकार संक्षेप में कह सकते हैं कि स्त्रियों के 'स्वभावज' अलङ्कारों द्वारा उनके मनोभावों संग का प्रदर्शन इष्ट होता है। इन अलङ्कारों से नारियां, प्रेम, मिलन ईर्ष्या आदि दशाओं में होने वाली मनोदशाओं को सूचित करती हैं।

3. अयत्नज अलङ्कार

नायिकाओं के योषिदलङ्कारों के वर्णन के पश्चात् पण्डित विश्वेश्वर ने 'अयत्नज' अलङ्कारों का वर्णन किया है जो कि उस प्रकार है–

"शोभा कान्तिश्च तथा माधुर्य मेव च

धैर्य प्रागल्भ्यमौदार्यमित्येते स्युरयत्नजाः।।

शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, प्रागल्भ्य तथा औदार्यता ये सभी 'अयत्नज' अलङ्कार हैं। भरतमुनि के पुरुषों के आठ स्वाभाविक गुणों के अन्तर्गत, शोभा, विलास, माधुर्य, स्थैर्य, गाम्भीर्य, ललित, औदार्य और तेज को प्रस्तुत किया है।

नाट्यदर्पणकार ने 'अयत्नज' अलङ्कारों का विवरण देते हुए कहा है– 'अयत्नज' अलङ्कार बिना यत्न के उत्पन्न होने वाले सात धर्म हैं।

'यथायत्नजेशु सप्तसु धर्माः।

शोभा

भरतमुनि ने कहा है–रूप, यौवन तथा लावण्य आदि के उपभोग से विकसित अङ्गों का सजाना या शारीरिक सौन्दर्य का खिल उठना 'शोभा' कहलाता है।

'रूपयौवनलावण्यैरूपभोगोपवृहितैः।

अलङ्कारणमङ्गनां शोभेति परिकीर्तितम्।।

आचार्य विश्वेश्वर ने लिखा है–

'अङ्गान्यभूशितान्येव कटणधैर्विन्भूषणैः।

येन भूषितवदमान्ति तद्रुपमिति कथ्यते।।

मुक्ता फलेषु च्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।

प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यनिति श्रुतम।।

नाट्यदर्पणकार के अनुसार उपभोग के बाद यौवन आदि की उज्ज्वलता 'शोभा' कहलाती है।

तहा रमणवित्थरो जहण माइ कंचीलदा

तहा सिहिणतुङ्गिमा जहण एइ दिठ्ठ पअम्।

तहा णअणवड्ठिमा जहण किंति कुष्णुप्पलं

तहा अ मुध्मुज्जलं दुससिणी जहां पुष्णिमा।। (रसचन्द्रिका)

कान्ति

शोभा का विकसित अथवा समृद्ध रूप ही कान्ति है।

पण्डित विश्वनाथ ने कहा है कि जब 'शोभा' में काम विलास की वृद्धि परिलक्षित होने लगती है तो उसे कान्ति कहते हैं।

''विज्ञेया च तथा कान्ति औभैवापूर्वयन्मपा।''

कान्ति का उदाहरण इस प्रकार है–

मंजिठ्ठीओठ्ठमुछा धण्धसणसुवष्णुज्जला अगलच्छी

दिठ्ठी बालिन्दुलेहाधवलिमजइणी कुन्तला कज्ज्लाहा।

इत्यं विष्णाणलेहा विहरइ हरिणीचंचलच्छीअ टीए।

केदप्योजअिदप्पो जुअजणजअणे बद्धलक्यो विभादि।

दीप्ति

कान्ति का अतिशय विस्तार 'दीप्ति' कहलाता है।

'कान्तिरेखातिविस्तीर्णा दीप्तिरित्यभिधीयते।'

शारदातनय ने दीप्ति का लक्षण करते हुए कहा है–

कान्तिरेवोपभोगेन देशकालागुणादिभिः।

'उर्ब्रप्यमाना विस्तार याता दीप्तिरिति स्मृता।'

धावई पुरओ पुरओ मुहजोहणाए तुह पवाहो।

वअणावरणणिअंसणमञ्झिममग्गपपणालेणं।। (रसचन्द्रिका)

'शोभा', 'कान्ति', 'दीप्ति' यौवन की तीन अवस्थायें हैं जो एक दूसरे की पूरक हैं। रूप, यौवन और लावण्य आदि के अतिशय को शोभा कहते हैं। 'शोभा' भी जब अत्यधिक अनुरागातिशय को प्राप्त होती है तो 'कान्ति' कहलाती है और 'कान्ति' भी पूर्ण विकास और विस्तार को प्राप्त होती है तो दीप्ति कहलाती है।

इस प्रकार यह यौवन की क्रमशः मन्द, मध्य और तीव्र अवस्थायें हैं। जो कि यौवन को अलंकृत करती है और उसकी शोभा में चारूता के अतिशय का प्रदर्शन करती है।

माधुर्य

शरीर की क्रियाओं में चाहे वह 'दीप्ति' या 'ललित' भाव की हो, रमणीयता रहना 'माधुर्य' कहलाता है।

''सर्वावस्थाविशेषेषु दीप्तेशु ललितेषु च।

आनुल्वणत्वं चेष्टाया माधुर्यमिति संक्षितम्।।''

भरतमुनि ने माधुर्य की अन्य परिभाषा देते हुए कहा है–

'दीर्घकालीन अभ्यास के कारण इन्द्रियों का किसी भाव या विकास के अतिशय रहने पर भी (इससे) आन्दोलित न होना या अपनी स्थिति प्रवृत्ति में रहना 'माधुर्य' कहलाती है।

नाट्यदर्पणकार ने कहा है ताप रहने पर भी सौम्यता 'माधुर्य' है।

'सौम्यं तापेऽपि माधुर्यम्।'

इस प्रकार रमणीयता का भाव रहना 'माधुर्य' का अभिव्यंजक है।

भ्रभङ्ग सहसोग्दतेऽपि वदनं नीतं पदां नम्रता
मीषान्मां प्रति भेदकारि हसितं नोक्तं वचो निष्ठुरम्।
अत्तर्वाष्पजडीकृतं प्रभुतया चतुर्थ विस्फारितं
कोपश्प्य प्रकटकृतो दयितया मुक्तश्व न प्रश्रायः।''

धैर्य

विषय परिस्थितियां अपने पर भी व्यक्ति का विचलित न होना 'धैर्य' कहलाता है।

चंचलता से रहित तथा सभी बातों में आत्मलाघा से विमुख रहने वाली स्वाभाविक मनःस्थिति को धैर्य कहते हैं।

''धर्मार्थकामसंयुक्ताच्छुभाशुमसमुस्थितात।

व्यवसायादचलनं स्थैर्यमित्यभिसांक्षितम्।।''

पण्डित विश्वनाथ के अनुसार–धैर्य वह सात्विक गुण है, जिसे बड़े–बड़े विघ्नों के पड़ने पर भी कर्तव्यनिश्चय से विचलित न होना कहा जाता है।

चतधारिणी पिअदंसणा अ तरूणी अ पऽतीपऽआ अ।

असइसहरिआ दुग्गआ अ ण टु खण्डिआं सीलम्।। (रसचन्द्रिका)

प्रस्तुत पद्य में किसी नायिका के शील की प्रशंसा की गयी है। कठिन परिस्थितियों में भी वह धैर्य धारण किये हुए हैं।

प्रगल्भता

सम्भाषण या अन्य कार्यों को निर्भय होकर करना 'प्रागल्भ्य' कहलाता है।

''प्रयोगानि सहवसता प्रागल्भय समुदाहृतम्।''

साहित्यदर्पणकार के अनुसार 'प्रगल्भता' एक ऐसी विशेषता है, जिसे नायक और नायिका के ह्रदय की निर्भयता कह सकते हैं।

प्रेम प्रदर्शन की निश्चिंतता अथवा निर्भयता को ही 'प्रगल्भता' कहते हैं। उदाहरण निम्न है।

"वृथा परीहास इति प्रगल्भता ननेतिच
त्वादृशि वाग्विगर्हणा।
भवत्यवज्ञा च भवत्यनुत्रराददतः प्रदित्सुः
प्रतिवाचमस्मि ते।।"

औदार्य

सभी अवस्थाओं में नम्रतापूर्वक आचरण करना 'औदार्य' कहलाता है। नाट्यदर्पणकार ने 'औदार्य' की परिभाषा देते हुए कहा, उचित मार्ग से पतित न होना 'औदार्य' कहलाता है।

पण्डित विश्वेश्वर के अनुसार 'औदार्य' का तात्पर्य है– **'स्थूललक्षत्वमौदार्भ्यय'**

औदार्पता को विश्वेश्वर ने उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया है–

पातर्वर्णनयानया निजवपुर्भुषाः प्रसादानदा

देद्वी वः परितोशितेति निहितामान्यतः पुरिक्यापुरः।

सूता मण्डनमण्डली परिदधुमाणिक्यरोचिर्मय।

क्रोधवेशसरागलोचनरूपा दारिद्यविद्राविणीम्।। (रसचन्द्रिका)

स्त्रियों के अलङ्कारों में उनके आभूषण केशविन्यास वस्त्रादि उनकी शोभा से संवर्द्धन करते हैं किन्तु उनके अङ्गां उपङ्गों आदि के द्वारा भी उनके सौन्दर्य में वृद्धि का विधान किया गया है। वाणी, अङ्ग, मुखराग तथा सत्त्व से युक्त अभिनय द्वारा ह्रदय के अतिसूक्ष्म भावों का प्रकटीकरण होता है। इन योषेदलङ्कारों के द्वारा स्त्रियां अपनी ह्रदय की सुकोमल मनोदशाओं को अभिव्यक्त करती है। इन यौवनालङ्कारों के द्वारा भावों का सम्प्रेषण भी होता है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1.नाट्यशास्त्र प्रस्तावना पृ0 61

2.नाट्यशास्त्र 24 / 4, 24 / 6, 24 / 11–12,13,14ख 24 / 22, 24 / 24, 24 / 34, 24 / 35, 4 / 29

3.रसचन्द्रिका– पृ0 85, 86

4.साहित्यदर्पण–3 / 806–62, 3 / 93, 3 / 94, पृ0 180, 3 / 103, पृ0188, 189, 181, 3 / 53

5.रसकौस्तुभ– पृ0 103

6.रसचन्द्रिका– पृ0 87, 88, 89

7.रसचन्द्रिका– पृ0 90,91, 92, 98, 100

8.नाटकलक्षण रन्तकोष– पृ0 345–347, पृ0 256, पृ0 247, पृ0 275, 276, 250, 254

9.नाट्यदर्पण पृ0 384–385, 4/270, 4/276, 4/288, 4/279

10.रसवर्णावसुधारक– 1/209–211

11.नाट्यशास्त्र, पृ0 176, 182, 61–62

12.काव्यनुशासन– सातवां अध्याय पृ0 372

13.नाट्यदर्पण– पृ0 390, 4/283, 4/285

14.भाव प्रकाशन– पृ0 8